सप्तम अध्याय

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा और शिल्प का विवेचन

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा और शिल्प का विवेचन

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। व्यक्ति अपने भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के लिए भाषा का प्रयोग करता है जिससे अपनी बातों को एक-दूसरे तक स्वतः संप्रेषित कर सकता है। आपस में सम्प्रेषण स्थापित करने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा के माध्यम से संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता है। अतः भाषा न केवल संवाद स्थापित करने का माध्यम है, बल्कि संस्कृति का प्रतिनिधित्व भी करती है। जब तक भाषा जीवित रहती है तब तक संस्कृति का अस्तित्व बरकरार रहता है। भाषा की मौत के साथ-साथ संस्कृति की भी मौत हो जाती है। उदाहरण के लिए 'बो' आदिवासी भाषा को लिया जा सकता है। 'बो' अण्डमान की प्राचीन भाषाओं में से एक है। उत्तरी अण्डमान के पश्चिमी तटीय क्षेत्र में बो भाषा-भाषी समुदाय निवास करती थी। 1858 में बो 200 लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी जो वर्ष 1901 में घटकर 48 हो गई। धीरे-धीरे इस भाषा को बोलने वालों की संख्या मात्र 15 हो गई। इस भाषा को बोलने वाली अंतिम महिला बोआ सीनियर का निधन 26 जनवरी 2010 में हो गया और उनकी मृत्यु के साथ एक प्राचीनतम भाषा की मौत हो गई। इस प्रकार अन्य कई भाषाएँ हैं जो अस्तित्व के संकट से लड़ रही है और दुर्लभ भाषा के रूप में परिवर्तित हो रही है। कुछ भाषाएँ नष्ट होने के कगार पर आ गई हैं जिसका प्रमुख कारण अन्य भाषा के प्रति बढ़ता आकर्षण बताया गया है। इस संदर्भ में हरिराम मीणा का कथन द्रष्टव्य है - "अतीत से जड़वत् जुड़े रहना अच्छी बात नहीं मानी जा सकती लेकिन अतीत की समृद्ध धरोहर का संरक्षण समझदार व्यक्तियों का सरोकार होना चाहिये। विलुप्त होती भाषाओं का मुद्दा भी इसी तरह का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है जिस पर गंभीरता से चिन्तन किया जाना चाहिये।"[1] आदिवासी संस्कृति की एक समृद्ध परंपरा रही है। अतः भाषा के साथ-साथ संस्कृति के अस्तित्व का प्रश्न भी अभिन्न

रूप से जुड़ा हुआ है। आदिवासी भाषा को बचाने की मुहिम तेजी से चल रही है जिसका मुख्य उद्देश्य अपनी भाषा को संरक्षित और जीवित रखना ताकि वह 'एक्सटिंक्ट' न बन जाए।

भाषा किसी समुदाय की समृद्ध थाती होती है, उस समुदाय का एक भरा पूरा इतिहास होता है। भाषा मानव इतिहास से साक्षात्कार कराती है। अतः भाषा पूरे समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है। न्गूगी वा थ्योंगो ने कई भाषाओं को उन रंग-बिरंगे पुष्पों के समान बताया है जिससे मैदान सुशोभित होता है, जो रंगों और आकृति में भिन्नता होने के बावजूद एकता के भाव को अभिव्यक्त करता है। उन्होंने कहा है - "इसी प्रकार हमारी विभिन्न भाषाएँ एक सामूहिकता के बोध को व्यक्त कर सकती हैं और उन्हें यह कहना भी चाहिए। इसलिए हमें चाहिए कि हमारी सभी भाषाएँ धरती के लोगों की एकता, हमारी समान मानवता और सबसे बढ़कर शांति, समानता, स्वतन्त्रता और सामाजिक न्याय के गीत गाएँ।"[2] अर्थात् भाषा के माध्यम से सामूहिक भाव बोध की अभिव्यक्ति होती है और सामूहिकता आदिवासी समाज का आधारिक स्तम्भ माना जाता है। अतः भाषा एकता का परिचायक है।

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि आदिवासी साहित्य-सृजन के समय आदिवासी जीवन दर्शन एवं मूल्यों का विशेष ख्याल रखना पहली शर्त है। दूसरा, भाषा जन-जन तक पहुँचने का सबसे सुलभ माध्यम है। अतः भाषागत शुद्धता उतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है जितना अन्य साहित्य में परिलक्षित होता है। आदिवासी उपन्यासों की रचना आदिवासी और गैर आदिवासी लेखकों ने की है। यद्यपि हिन्दी आदिवासी लेखकों की मातृभाषा नहीं है, तथापि उन्होंने हिन्दी में अपनी जानकारी और समझ विकसित की तथा हिन्दी भाषा में लेखन कर आदिवासी साहित्य जगत को समृद्ध किया है। यही कारण है कि आदिवासी उपन्यासों में भाषागत सौन्दर्य के स्थान पर सरलता एवं स्पष्टता अधिक है। भाषागत सरलता और सहजता उनके मूल जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करने में अधिक सक्षम रही है ताकि पाठक वर्ग तक एक भिन्न संस्कृति की सही समझ

विकसित हो सके। इस एवज पर आदिवासी उपन्यास खरा उतरता है। डॉ. वीर भारत तलवार का कहना है कि "आदिवासी समाज के बारे में लिखना सबके लिए मुमकिन नहीं, क्योंकि वह ऐसा खास समाज है जो ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से हमारी वर्तमान अवस्था से बहुत अलग मंजिल पर है। उसके सामने खड़े सवाल, उनका धर्म, संस्कृति, उनकी भाषा और जीवन निर्वाह की परिस्थितियाँ - सभी कुछ हमारे समाज से बहुत अलग और अनजानी है।"[3] इसी तरह रोहिणी अग्रवाल भी कहती हैं - "बेशक सृजन के समय रचनाकार सृष्टा होता है, लेकिन उसके सृष्टा के भीतर बैठा बोध उसके वर्ग, धर्म, लिंग और वय से निर्देशित प्रभावित होता हुआ उसे जो दृष्टि और संवेदना देता है, वही उसके लेखकीय व्यक्तित्व का सृजन करता है और रचना में प्रतिफलित होता है।"[4] इस संदर्भ में 'लौटते हुए' उपन्यास को देखा जा सकता है। उपन्यास में एक आदिवासी स्त्री ने जहाँ से प्रस्थान किया था वहीं पर वापस लौटने की कथा वर्णित है। कथा का ताना-बाना सलोमी के इर्द-गिर्द घूमता है। कथा के साथ-साथ आदिवासी जीवन दर्शन एवं जीवन मूल्यों की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता, समानता और सहअस्तित्व - आदिवासी समाज के मूल तत्त्व हैं जिसका ध्यान रखते हुए लेखक उपन्यास की मूल संवेदना को पाठकों तक प्रेषित करने में सफल रहे हैं। उदाहरण के तौर पर एक प्रसंग द्रष्टव्य है जहाँ सलोमी के साथ सामूहिक बलात्कार होता है। अनुराधा द्वारा इसका विरोध करने के लिए कहा गया तो सलोमी का कथन उस मूल्य को अभिव्यक्त करता है जो उसके समाज ने उसे दिया है - "विरोध करने से आखिर मिलेगा क्या? मेरा बीता हुआ कल तो वापस नहीं मिल जायेगा न ! और इसमें मेरी तो बदनामी होगी ही, आप सबकी भी बदनामी होगी।...और मैं ऐसा नहीं चाहती हूँ।"[5] आदिवासी समाज में विरोध और प्रतिकार जैसी भावना विद्यमान नहीं है और न ही सामने वाले को बदनाम कर प्रशंसा तथा यश प्राप्त करना सामाजिक मूल्य में निहित है। पूरे समुदाय के हित में ही सबका हित है, यही धारणा मूल रूप से विद्यमान है।

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में क्षेत्रीय भाषा का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। प्राकृतिक राग, रंग, संस्कृति को व्यक्त करने के लिए क्षेत्र विशेष की भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पुरखा गीत, कथा, कहावतें आदि का चित्रण समुदाय विशेष की भाषा में किया गया है अर्थात् आदिवासी उपन्यासों में स्थानीय छटा देखने को मिलती है। आदिवासी समुदाय के संदर्भ में एक कहावत प्रचलित है - चलना ही नृत्य है, बोलना ही गीत है। यह महज कहावत नहीं है, बल्कि इसमें आदिवासी जीवन का सार अभिव्यक्त हुआ है। बचपन से ही शिशु को चलना और बोलना सिखाया जाता है। प्रकृति और समाज के सान्निध्य में शिशु चलना और बोलने के साथ-साथ क्रमशः नृत्य और गीत सीखता है। वस्तुतः नृत्य-गीत आदिवासी जीवन की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि प्राचीन काल में कबीलों के मध्य संकेतों के माध्यम से संवाद स्थापित होता था। इसलिए सांकेतिक भाषा को भाषा का ही एक रूप स्वीकार किया गया है। भारत में 500 से अधिक भाषाएँ हैं जिनका इस्तेमाल बोलकर किया जाता है। लेकिन एक ऐसी भी भाषा हुआ करती है जिसमें कोई शब्द नहीं होते थे और न ही ध्वनियाँ होती थी। बिना शब्दों एवं ध्वनियों के आदिवासी संवाद किया करते थे। यह भाषा विश्व की सबसे प्राचीन भाषा मानी जाती है। आदिवासी समुदाय ने अपने अनुभवों को साझा करने के लिए सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया। यह पहली भाषा थी जिसका आविष्कार पुरखों ने किया जो लगभग 70000 साल पहले की बात है। आदिवासी प्रकृति के सान्निध्य में रहकर जीवन बिताते हैं। जो भी सीखा प्रकृति से ही सीखा। प्रकृति में जितने भी जीव जगत थे, उनके संवाद करने के तरीके को आदिवासियों ने अनुसरण किया और उसे अपनी भाषा के रूप में विकसित किया। इसका जीवंत उदाहरण है तुर्की बर्ड लेंग्वेज (पक्षी भाषा)। सीटी और धुनों के माध्यम से संवाद स्थापित किया जाता है जो पक्षियों की भाषा से मेल खाती है। दुर्गम पहाड़ी इलाकों से घिरे कुस्कोय गाँव में इस भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसे 'कुसदिली' कहा जाता है। एक किलोमीटर से अधिक दूरी पर इसकी ध्वनियों को सुना जा सकता है। "Most villagers believe Kusdili arose about

400 years ago, although no one knows for sure. The “language” is, in fact, a whistled dialect of Turkish, with each syllable rendered in one of about 20 different sounds. Typical subjects include invitations to tea or to help with work, notifying neighbors about the arrival of a truck to pick up the harvest, or announcements of funerals, births and weddings.”[6] तुर्क के जैसे कई अन्य देशों में इस तरह की भाषा का प्रयोग किया जाता है जो अनुसंधानकर्त्ताओं और भाषाविदों का मन मोह लेती है। मोबाइल का प्रभाव दिनोदिन बढ़ता जा रहा है और इस भाषा के महत्त्व और प्रयोग को घटा दिया है। इस ‘पक्षी भाषा’ को संरक्षित करने के लिए स्कूलों में इसकी शिक्षा प्रदान की जाती है तथा अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों को इस भाषा का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

नृत्य-गीत के माध्यम से सहजता की प्रवृत्ति को अपनाया है। आदिवासी उपन्यासों में **गीतों** की अद्भुत छटा विद्यमान है। इन गीतों में आदिवासी जीवन दर्शन, विभिन्न भावों यथा प्रेम, विरह, दुःख, शौर्य आदि तथा जीवन से संबंधित संस्कारों एवं रीति-रिवाजों की अभिव्यक्ति हुई है। आदिवासी समुदाय जल, जंगल, जमीन, प्रकृति से गहरे रूप से संपृक्त है। प्रकृति की दृष्टि में सब समान हैं; वह सबको समान रूप से आश्रय देती है। व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न न होकर एक ही है। वे उन नदियों की तरह हैं जिसकी कई धाराएँ हैं, लेकिन सब धाराएँ एक नदी में ही जाकर मिलती है। इस जीवन दर्शन को निम्न गीत में देखा जा सकता है -

“सूरज कभी दो नहीं होता

सोने के समय आने वाला चांद भी

कई नहीं, एक ही होता है

यहां तक कि अभी इस जंगल में जो लोग जुटे हैं

सूरज और चांद की तरह एक ही हैं

और एक-एक आदमी सैकड़ों के बराबर है।"[7]

भाषा को जीवित रखने में गीतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। पुरखों द्वारा गाये गए गीतों को मौखिक रूप से उनकी भावी पीढ़ी गाती है और इन्हीं गीतों के माध्यम से वे अपने पूर्वजों का स्मरण करते हैं। जिस तरह एक पक्षी खाद्य को ग्रहण करती है ताकि वह अपने बच्चे के मुख में अपने मुख से उस खाद्य को खिला सके, उसी प्रकार बुजुर्गों और माता-पिता के माध्यम से भाषाएँ मौखिक रूप से अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है। इस तरह का एक पुरखा गीत द्रष्टव्य है -

"पानी का सुनहलापन

किसी चांदी की वजह से नहीं है

नहीं चाहिए हमें

खतना और आचमन का चांदी जैसा पानी

हम तो उस निर्मल जल पर ही प्रेम से मर मिटते हैं

जो मिलावट रहित है, स्वच्छ है।"[8]

आदिवासियों ने कभी अपने इतिहास को विस्मृत नहीं किया है, भले ही इतिहास ने उन्हें विस्मृत कर दिया हो। वे अपने पुरखा लड़ाकों के योगदानों को सदैव स्मरण रखते हैं और गीतों के रूप में गाते हैं। अंग्रेजों के विरुद्ध प्रथम जन आंदोलन के रूप में पहाड़िया आंदोलन देखा जाता है जिसकी अगुवाई तिलका मांझी ने की थी। अपने पुरखे लड़ाका के स्मरण में पहाड़िया आदिवासी समुदाय का एक गीत प्रस्तुत है -

"जिए जिए तिलका मांझी

जिए जिए हुल।

तेलियागढ़ कोटा-परकोटा

तिलका वीर ने झंडा ठोंका

हुल-हुल हुलमाहा नाचे

गगन दमामा बाजे"[9]

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में भील नेता गोविंद गुरु अंग्रेजों को समस्त आदिवासी समुदाय का वास्तविक शत्रु मानते थे। उनके अत्याचारों की सीमा नहीं थी जिससे आदिवासी त्रस्त थे और उनसे मुक्ति की कामना करने लगे थे। इस संदर्भ में गोविंद गुरु द्वारा रचित गीत द्रष्टव्य है-

"झालोद मांय मारी कुंडी है

दाहोद मांय मारो दीयो है

भूरेटिया नी मानु रे

गोधरा मांय मारी जाजम है

अहमदाबाद मांय बैठक है

दिल्ली मांय मारी गादी है

बेणेश्वर मांय मारो चोपड़ो है

मानगड़ मारी धूणी है

भूरेटिया नी मानु रे

जाम्बू में मारो अखाड़ो है

मानगड़ मारो वेरा है

वेरा ने वाली ने पंचायत राज करबू है।

भूरेटिया नी मानु रे....."[10]

इस प्रकार आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में प्रयुक्त गीतों में आदिवासी समुदाय का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन परिलक्षित होता है जिसमें अनुभवों एवं परिस्थितियों का मिलाजुला रूप दिखाई देता है।

गीतों के अलावा **पुरखा कथाओं** की चर्चा उपन्यासों में की गई है जिसके अंतर्गत कथाओं, कहावतों आदि की अभिव्यक्ति हुई है। 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में संतालों की वंशवृद्धि के संबंध में कथा की चर्चा की गई है जो इस प्रकार है -

"हिहिड़ी-पिपिड़ी में जन्मे संताल हराता होते हुए नयी भूमि ढूंढते जब खोजकामान तक पहुँचे थे, तब तक संतालों में अनेक मानवीय बुराइयाँ आ चुकी थी। दिन-रात मद्य और विलास में डूबे रहते थे संताल। ईश्वर को भूलकर पतन की सुरंग में उतरते जा रहे थे।

संतालों के इस पतन पर ठाकुर जी अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने संतालों को शाप दे दिया। प्रलय उपस्थित कर दिया।

'कादा बीट कील लीखे नाको...!' अर्थात् पशुओं के समान भोजन और मैथुन मात्र में रत रहनेवाले संतालों पर ठाकुर जी ने आग बरसाना प्रारम्भ कर दिया था।

एयाय सियं एयाय जिन्दा सेंगेल दागे हो,

एयाय सियं एयाय जिन्दा जाड़ाम-जाड़ाम हो,

एक संताल पुरुष और एक संताल स्त्री को ठाकुर जी ने सुरक्षित रखा। शेष संताल जाति अग्निवर्षा में समाप्त हो गयी थी। अग्निप्रलय के उपरांत बचे इसी संताल जोड़े ने 'सासाङबेड़ा' में आकर संतालों की वंशवृद्धि की थी।"[11]

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण 'काला पादरी' उपन्यास में देख सकते हैं जिसमें उरांव पुरखा कथा की चर्चा की गई है जो इस प्रकार है -

"भइया-बहन ने हंड़िया छान कर पी ली और नशे में आ गये और तब धरमेस ने उन्हें प्रजनन के रहस्य का ज्ञान कराया। अब तक भइया-बहन के बीच लकड़ी का एक लट्ठा डाल कर एक साथ सोया करते थे। धरमेस ने विधिवत् लड़के को बुलाया और उससे कहा, 'जब तुम यह लट्ठा पार करो, तब मानव की वृद्धि होगी।' और जब भइया-बहन गहरी नींद में पड़ गये तब धरमेस ने लकड़ी का वह लट्ठा उनके बीच से हटा दिया। इस तरह धरमेस ने मनुष्य की प्रथम जोड़ी की शुरुआत की। उसने विवाह की स्थापना की। कथा के अंत में यह कहा गया है कि इस तरह मानव जाति की वृद्धि हुई और सारा संसार उनसे भर गया।"[12]

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में लेखक रणेन्द्र ने असुर आदिवासी समुदाय की उत्पत्ति से लेकर विनाश की कथा पात्र रूमझुम के माध्यम से व्यक्त किया है। प्राचीनकाल से ही असुर समुदाय को जंगलों में खदेड़ा गया। वे जहाँ भी बसे उन्हें वहाँ से खदेड़ा गया जिससे उनकी व्यवस्थित संस्था नष्ट हुई। लेकिन इतिहास में इसकी कोई चर्चा नहीं मिलती है। वे केवल लोगों की जिह्वा पर कथा के रूप में जीवित है। असुर समुदाय को तीन भागों में बांटा गया है - बीर असुर, अगरिया असुर और बिरिजिया असुर। इन तीनों की उत्पत्ति के संबंध में उपन्यास में विस्तार से चर्चा मिलती है।

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन में प्रयोग किये जाने वाले **शब्दों** की अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यास की सजीवता को बनाए रखने के लिए इन शब्दों का प्रयोग आवश्यक था। दूसरी अहम बात यह है कि हिन्दी में इन शब्दों का समानार्थक शब्द उपलब्ध न होने के कारण उपन्यासों में यथावत प्रयोग किया गया है ताकि अर्थ का अनर्थ न हो और गलत अर्थ संप्रेषित होने से अच्छा है कि वह उसी रूप में प्रयुक्त होकर सही अर्थों को संप्रेषित करे। जैसे सिंगबोंगा कहने से आदिवासियों के देवता का बोध होता है। यदि सिंगबोंगा

के स्थान पर देवता शब्द का इस्तेमाल किया जाए तो अर्थ बदल जाएगा। कारण यह है कि आदिवासियों में देवी-देवता जैसा लिंग विभाजन नहीं है और देवता कहने से पुरुष वर्ग का बोध होता है जबकि सिंगबोंगा किसी वर्ग-विभाजन की कोटि में नहीं आता है। अतः सिंगबोंगा का यथावत प्रयोग उपन्यासों में मिलता है। इसी प्रकार अनेक शब्द हैं जो इस प्रकार हैं - सरना, हड़िया, अखड़ा, उलगुलान, इकिरबोंगा, ससनदिरी, जाहेरथान, हूल, धुमकुडिया, खूँटकट्टी, जाहेर आयो, मरांगबुरू, बिटलाहा, सेन्द्रा, चाँदो बोंगा, बुरूबोंगा, इटूट बापला, गोमके, पाहन, अबुआ दिसुम आदि।

साहित्य के अंतर्गत **शैली** का विशेष महत्त्व है। शैली के माध्यम से रचनाकार अपनी रचनाओं को प्रभावपूर्ण बनाता है। प्रत्येक लेखक के पास अनुभवों का निजी संसार होता है। इन अनुभवों की अभिव्यक्ति विभिन्न शैलियों के माध्यम से होती है। आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में कई प्रचलित शैलियों का प्रयोग देखने को मिलता है जिनमें पूर्वदीप्ति शैली, पत्रात्मक एवं डायरी शैली आदि द्रष्टव्य है। **पूर्वदीप्ति शैली** को 'फ्लैश बैक' शैली भी कहते हैं। इस शैली का प्रयोग पिछली बातों को याद करने के क्रम में कथावस्तु प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। जो घटना अतीत में घट चुकी होती है उसका विवरण दिया जाता है जिसमें पात्र अतीत की स्मृतियों में खो जाता है। लेखक पात्रों के माध्यम से उक्त शैली का प्रयोग करता है जिसमें पात्र वर्तमान में जीते हुए अतीत के सुखद या कटु अनुभवों का स्मरण करता है। 'रेड जोन' उपन्यास में इस शैली का प्रयोग किया गया है जहाँ गुरुजी अपनी पिछली बातों को याद करते हैं जब उन्होंने संसदीय राजनीति में प्रवेश लेने का निर्णय लिया था -

"बहुत दिनों बाद याद आ रही है वह भीषण काली रात। जेल की घंटी अचानक टनटना उठी थी। जेल के फाटक पर आकर कोई गाड़ी रुकी थी। फिर फौजी बूटों की लयबद्ध खटखटाहट जो उनके सेल के सामने आकर रुक गयी थी। उनको सेल से निकालकर उन लोगों ने अपने घेरे में ले लिया था। फिर बख्तरबंद काली गाड़ी में उन्हें बैठा कर वे ले चले थे।"[13]

पत्रात्मक एवं डायरी शैली के माध्यम से कथा को प्रस्तुत किया जाता है। पात्र अपने मन की बातों को पत्र एवं डायरी के माध्यम से प्रकट करते हैं। कथा के अंतर्गत कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य इस शैली के माध्यम से उजागर होता है। डायरी शैली के अंतर्गत पात्र अपने अन्तर्मन की बातों को डायरी में लिखकर अभिव्यक्त करता है। आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में इन शैलियों का प्रयोग किया गया है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में रुमझूम ने तत्कालीन प्रधानमंत्री को पत्र लिखा जो असुर आदिवासी समुदाय की स्थितियों को बयां करता है। पत्र कुछ इस प्रकार है -

"आदरणीय प्रधानमंत्री महोदय,

जोहार,

बड़ी हिम्मत बाँधकर यह खत आपको लिख रहा हूँ। मैं आपकी ईमानदारी और सादगी का कायल रहा हूँ और आपका बहुत बड़ा प्रशंसक हूँ। स्वतन्त्रता दिवस और अन्य अवसरों पर आकाशवाणी से प्रसारित आपके भाषणों को गौर से सुनता रहा हूँ।

आपने बहुत ईमानदारी से इस बात को कई मौक़े पर स्वीकार किया है कि बाज़ार के बाहर रह गये लोगों को इस अर्थव्यवस्था का लाभ नहीं मिल सका है। साथ ही आप इस व्यवस्था को मानवीय चेहरा देने की बात करते रहे हैं जिसने हमारे मन में बड़ी आस जगाई है।

महोदय, शायद आपको मालूम हो कि हमारा असुर समाज, निज़ाम के इस मानवीय चेहरे की तलाश हज़ारों सालों से करता रहा है।

हमारे पूर्वजों ने जंगलों की रक्षा करने की ठानी तो उन्हें राक्षस कहा गया। खेती के फैलाव के लिए जंगलों के काटने-जलाने का विरोध किया तो दुष्ट दैत्य कहलाये। उन पर आक्रमण हुआ और लगातार खदेड़ा गया।

लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा-कहानी वाले सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया। उनकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खन्ती सुदूर हाटों तक पहुँच गये। हमारे गलाये लोहे के औज़ारों की पूछ ख़त्म हो गयी। लोहा गलाने का हज़ारों-हज़ार साल का हमारा हुनर धीरे-धीरे ख़त्म हो गया।

मजबूरन पाट देवता की छाती पर हल चलाकर हमने खेती शुरू की। किन्तु बॉक्साइट के वैध-अवैध खदान, विशालकाय अजगर की तरह हमारी ज़मीन को निगलता बढ़ता आ रहा है।

हमारी बेटियाँ और हमारी भूमि हमारी हाथों से निकलती जा रही है।

हम यहाँ से कहाँ जाएँगे? यह हमारी समझ में नहीं आ रहा है।

एक बार राजधानी में यूनिवर्सिटी के पास झुग्गी-झोंपड़ियों वाली बस्ती में गया था। वहाँ इनसान तो थे, लेकिन उनके चेहरे ग़ायब थे। उनका कोई नाम नहीं था। पहचान ही ग़ायब हो गयी थी। बे-चेहरा लोगों को देख मैं बहुत डर गया था, महोदय। दौड़कर वहाँ से भागा।

महोदय, शायद आपको पता हो कि हम असुर अब सिर्फ़ आठ-नौ हज़ार ही बचे हैं। हम बहुत डरे हुए हैं। हम ख़त्म नहीं होना चाहते। भेड़िया अभयारण्य से कीमती भेड़िये ज़रूर बच जाएँगे श्रीमान्। किन्तु हमारी जाति नष्ट हो जाएगी।

सच कहें तो हम बिना चेहरे वाले इनसान होकर जीना नहीं चाहते श्रीमान्। हमें बचा लीजिये श्रीमान्। हमारी आख़िरी आस आप ही हैं।

और क्या लिखूँ !

आपका ही

रुमझूम असुर

कंदापाट, पो. कनारी, थाना कोयलबीघा

जिला, बरवे, कीकट प्रदेश"[14]

इस पत्र के माध्यम से असुर आदिवासी समुदाय की संकटग्रस्त स्थिति से साक्षात्कार होता है जिसे लेकर असुर समुदाय चिंतित है और अपने पहचान और अस्तित्व को बचाने का हरसंभव प्रयास करने के लिए तत्पर हैं। इसी प्रकार डायरी शैली का एक उदाहरण 'गायब होता देश' उपन्यास से द्रष्टव्य है। इस उपन्यास में डायरी शैली का प्रयोग किया गया है जिसमें किशन विद्रोही के द्वारा लिखी गई डायरी के माध्यम से मुंडा आदिवासी समुदाय के जीवन, संघर्ष और संस्कृति का वास्तविक परिचय मिलता है। यथा -

"**8 अगस्त**

हे सिंगबोंगा। देवी राजा!! दिरिलेका कुडुमतेम तुम्हारी सृष्टि की इस सम्पूर्ण रचना का सुदृढ़ आधार है। तुमने शून्य आकाश और पारावर जल को एक व्यवस्था दी है। तुमने चेतन-अवचेतन सब की रचना की है। तुमने अपने सौन्दर्य को इस संपूर्ण प्रकृति में बिखेर दिया है। तुम पहली ऊषा हो, पहला सूर्योदय। तुम्हारी शुभ्रता शुद्ध दूध की तरह उठती है, श्वेत दही की तरह स्थिर हो जाती है। तुम जगत-नियंता हो। हे सिरमारेन सिंगबोंगा! देवी राजा!! तुम मुंडाओं के पितामह हो, बड़े आजा। हर जगह उपस्थित, सब पर नज़र रखने वाले। हे देवी राजा! तुम मुंडाओं के मित्र हो, उनके शुभचिंतक। उन पर अपना आशीर्वाद बनाए रखना। - **मुंडारी प्रार्थना**

हर आवाज को रिकॉर्ड करने के अपने झमेले-अपनी सुविधा। कई बातें, पूजा पद्धति, कस्टम ऐसे रिकॉर्ड हुए जो पहले कहीं लिपिबद्ध नहीं थे। लेकिन इतना कुछ रिकॉर्ड हो गया है कि लिखते-लिखते दम फूल रहा। कल रात ही सोचा था, पूरा लिख कर खत्म करूंगा लेकिन हो नहीं सका। दिन भर प्रेस की व्यस्तता। आज 5 अगस्त की पूरी घटना लिखने बैठा हूँ। गुज़रा तूफान न जाने कागज़ पर कैसा आकार ले? इतना तो तय है कि दो दिन और दो रातों ने मेरी ज़िंदगी बदल दी है। देखने का नज़रिया बदल दिया है।"[15]

उपन्यास में **संवाद** का विशेष स्थान है। कथा पात्रों के माध्यम से आगे बढ़ती है और संवाद वह कड़ी है जो कथा एवं पात्र को आदि से अंत तक जोड़े रखती है। प्रभावशाली संवाद न केवल रोचकता उत्पन्न करते हैं, बल्कि कथानक में निहित विषय-वस्तु और पात्रों की संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। संवाद के माध्यम से रचनाकार अपने मन्तव्य को स्पष्ट करता है। संवाद के बिना कोई भी रचना अपूर्ण होती है। आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में संवाद का सहज और सरल रूप देखने को मिलता है। संवाद संक्षिप्त और रोचक हैं। यथा -

'आ...! परशुआ !'

'याद आया?'

'हाँ। कुछ-कुछ, मगर...।'

'उसकी हुलिया कैसी थी?'

'हुलिया !'

'गोरा था?'

'गोर कहें कि साँवर !'

'कद? मेरा मतलब लंबा था या?'

'न लंबा, न नाटा !'[16]

संवाद के माध्यम से पात्रों की मानसिकता का पता चलता है। 'माटी माटी अरकाटी' उपन्यास में कुली के रूप में ले गये आदिवासियों के प्रति अंग्रेजों की मानसिकता निम्न संवादों के माध्यम से ज्ञात होता है -

'मौसम अच्छा है। अगर और एक सप्ताह तूफान नहीं मिला तो मेरा खयाल है, हम लोग 20 तक मॉरिशस पहुंच जाएंगे।'

'ईश्वर करे, ऐसा ही हो!' डॉक्टर ने कहा।

'पता नहीं ये कुली लोग कितना झेल पाएंगे! अभी तक तो स्थिति ठीक ही है।'

'हां, उल्टियां तो सभी कर रहे हैं, पर पहले से कम।'

'कॉलरा नहीं हो, इसका खयाल रखना होगा।'

'सब के सब जंगली हैं। खयाल रखने से भी कुछ नहीं होगा।' डॉक्टर के चेहरे पर घृणा थी। विद्रूपता से मुस्कुराते हुए बोला। 'समुद्र को भी तो अपना हिस्सा चाहिए।'[17]

कुछ संवादों के माध्यम से आदिवासी संस्कृति का परिचय भी मिलता है। जैसे सहिया जोड़ने की परंपरा आदिवासी संस्कृति का हिस्सा है। इसमें विधिवत् रूप से मित्रता की जाती है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में ललिता द्वारा सहिया जोड़ने की रस्म अदा की जाती है जिसमें वह वक्ता से कहती है -

"आपसे दोस्ती जमेगी। चलिये! हमलोग सहिया जोड़ लें।" यह ललिता की घोषणा थी। सहिया जोड़ने, यानी दोस्ती की विधिवत् घोषणा की अच्छी ख़ासी प्रक्रिया थी।

लालचन दा सुनकर हँसने लगे। "लड़का-लड़का और लड़की से लड़की का सहिया जोड़ाये तो देखते-सुनते आये। अब ललिता नया विधि-विधान, परम्परा शुरू कर रही है। लेकिन अच्छा है। सहिया भी चुनी है तो अपने जैसा किताबी कीड़ा। दिन-रात आकाश ताकने वाला। बढ़िया है।"[18]

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक परिदृश्य हो या राजनीतिक, प्रत्येक क्षेत्र में परिवेश के अनुकूल संवाद का प्रयोग किया गया है। 'समर शेष है' उपन्यास से एक

प्रसंग देखा जा सकता है जिसमें विस्थापित लोग बोकारो स्टील प्लांट के अधिकारी से मिलने कार्यालय जाते हैं -

"कैसे आना हुआ?"

"जनाब, हमारी जमीन आप कारखाना बनाने के लिए ले रहे हैं, लेकिन जमीन की मुनासिब कीमत तो हमें मिलनी चाहिए।"

"हमारा इन बातों से कोई मतलब नहीं। बिहार सरकार का नोटिफिकेशन हो चुका है और जमीन अधिग्रहण करने का काम भूमि अधिग्रहण एवं पुनर्वास कार्यालय का है। आप उनके अधिकारियों से बात करें।"

"उनसे हम क्या बात करें साहब? उन्होंने जमीन की कीमत तय करने के पहले हमसे पूछने की जरूरत नहीं समझी। धान की एक कट्ठा जमीन, जिसमें दस-बारह मन धान कम-से-कम होता है, उसका कीमत लगाई है उन्होंने 30 रु. डिसमिल। टाड़ जमीन सिर्फ 75 पैसे डिसमिल हमसे छीनी जा रही है। यह कहाँ का इन्साफ है?"

"देखो भाई राष्ट्र हित में त्याग तो करना ही पड़ता है। देश के विकास के लिए स्टील की कितनी अहमियत है यह तुम लोग नहीं समझोगे। इसके अलावा हर विस्थापित परिवार के एक सदस्य को हम नौकरी भी तो दे रहे हैं।"[19]

इस प्रकार आदिवासी उपन्यासों में संवाद कहीं भी बोझिल साबित नहीं होता है। कुछ भाव कथा के साथ-साथ संवादों के माध्यम से भी उभरकर सामने आते हैं। अतः किसी भी रचना में संवाद का विशेष प्रयोजन और महत्त्व होता है जो रचना का प्राण है।

किसी भी रचना की विशेषता इस तथ्य में है कि वह संवेदना उद्वेलित करने में सफल हो। एक विशेष प्रकार का रोमांच उत्पन्न कर सके। आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में लेखकों ने कई ऐसे **दृश्य** प्रस्तुत किये हैं जो पाठकों की संवेदना को जाग्रत करने

में सफल रहे हैं। दृश्यों के माध्यम से कहानियों में विस्तार और रोचकता आती है। उपन्यास का कोई भी हिस्सा अनुपयोगी साबित नहीं होता है। उपन्यास में कई कहानियाँ एक साथ चलती रहती हैं, उसमें प्रस्तुत दृश्यों के माध्यम से सभी कहानियाँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं। 'रेड जोन' उपन्यास में विस्थापितों को नौकरी देने की मांग को लेकर कालीचरण ने प्रबंधन से बातचीत की, लेकिन इस वार्ता से कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए कालीचरण ने आमरण अनशन किया। यहाँ अस्पताल का दृश्य प्रस्तुत है जहाँ कालीचरण का अनशन जबरन तोड़ा गया -

"देर रात पुलिस प्रशासन के लोग घटनास्थल पर पहुँचे। सभी अनशनकारियों को धरनास्थल से उठा कर पुलिस वैन में फेंक दिया गया। वे नारे लगाते रहे और प्रतिरोध करते रहे, लेकिन उनकी एक न सुनी गयी। गाड़ी अस्पताल की तरफ रवाना कर पुलिस के जवान उस तंबू को समेटने में लग गये और बाँस-बल्ली सेक्टर चार थाना ले गये।

अस्पताल के एक वार्ड में अनशनकारियों को जबरन दूध पिलाने की कोशिश हुई। लेकिन वे पूरे दम से विरोध करते रहे। नर्स ने आजिज आकर कहा - 'मुँह नहीं खोल रहा है। मुझसे नहीं होगा।'

वहाँ तैनात हेड कांस्टेबल ने आगे बढ़ कर कहा - 'आप जरा हटिए। हम मुँह खुलवाना जानते हैं।'

उसने हथेली बढ़ायी और नाक को चुटकी से बंद कर दिया। अगले पल मुँह खुल गया।

'अब डालिए मुँह में नली।'

नर्स ने आगे बढ़ कर नली मुँह में गले तक घुसेड़ दिया।"[20]

अस्पताल में मरीजों का इलाज किया जाता है, लेकिन कालीचरण और उसके साथियों को जबरन दूध पिलाकर अनशन तोड़ा गया। अपने अधिकारों की मांग करना अथवा आंदोलन करना

प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है, चाहे वह जिस प्रकार से आंदोलन करे। लेकिन उसके आंदोलन को व्यवस्था किस प्रकार कुचल देती है, यह उपरोक्त दृश्य में बखूबी प्रस्तुत किया गया है। यह दृश्य इस बात को उजागर करता है कि संस्था (अस्पताल) एक अच्छे उद्देश्य के लिए बनाई गई है, किन्तु उसका गलत उपयोग हो रहा है। इसी प्रकार 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में एक ऐसा दृश्य प्रस्तुत किया गया है जिसमें कबूतरा आदिवासी समुदाय का बालक राणा स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाता है। उसके साथ किये जाने वाले अमानुषिक कार्य का एक दृश्य प्रस्तुत है -

"मास्टरजी ने कह दिया था - तू नल नहीं छुएगा। नल के आसपास भी देख लिया तो...याद रखना, यहाँ सिपाही आते हैं, पकड़वा दूंगा।

प्यास के कारण उसका गला चटकने को आ गया, नल नहीं छू सका।

"पानी!"

मास्टरजी ने सुझाव दिया, "तालाब में से पीकर आ।"

राणा देखता रह गया। पाँचवीं कक्षा का बच्चा। 'पानी की स्वच्छता' वाला पाठ अभी दो दिन पहले ही पढ़ाया था। मास्टरजी को पता नहीं कि तालाब में कज्जा लोगों के बच्चे टट्टी-पेशाब फेंकते हैं। औरतें-आदमी शौचते हैं !"[21]

शिक्षक का स्थान समाज में सबसे ऊँचा माना जाता है। वह शिक्षार्थियों को अंधेरे से उजाले की ओर ले जाता है। किन्तु उपरोक्त दृश्य इसके विपरीत तथ्य को प्रस्तुत करता है। जाति के आधार पर ज्ञान का बँटवारा होता है जबकि ज्ञान पर सभी का अधिकार है। शिक्षक के इस कृत्य से अन्य बच्चों को बढ़ावा मिलता है। पानी की शुद्धता और स्वच्छता की शिक्षा आदिवासियों के संदर्भ में महत्त्वहीन हो जाती है तथा उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जाती है। आदिवासियों की दृष्टि में तथाकथित शिक्षा व्यवस्था प्रश्न के दायरे में खड़ा होता है।

उपन्यास में **देशकाल और वातावरण** का विशेष महत्त्व होता है। देशकाल और वातावरण के अंतर्गत देश के विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र की कथा को प्रस्तुत किया जाता है और कथाकार एक विशिष्ट समय के वातावरण के आधार पर कथा का वर्णन करता है। क्षेत्र समस्त घटनाओं का मूक साक्षी होता है। आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की कथा क्षेत्र विशेष से जुड़ी हुई है और उस क्षेत्र को समग्रता के साथ बखूबी उभारा गया है। 'गायब होता देश' उपन्यास झारखंड राज्य के 'सोना लेकन दिसुम' अर्थात् सोने जैसा देश मुंडा प्रदेश की कथा को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में उस समय की कथा वर्णित है जब वैश्वीकरण ने लोगों को अपनी चपेट में ले लिया है। आदिवासी समाज इससे अछूता नहीं रहा है। ह्वेनसांग जब भारत आया था तब उसने सोने-सी चमक देखकर नदी का नामकरण स्वर्णकिरण किया जो परिवर्तित होकर स्वर्णरेखा कहलाई। इसके बाद मुगलों ने हीरे की प्रचुरता को देखकर इस क्षेत्र में प्रवेश किया। किन्तु भूमंडलीकृत इंसानों की अत्यधिक लालसा ने मुंडा प्रदेश के समाज-संस्कृति को तहस-नहस कर दिया। 'छैला सन्दु' उपन्यास में झारखंडी सांस्कृतिक परिस्थितियाँ दिखाई देती है। यह उस समय के वातावरण को प्रस्तुत करता है जब भारत में धातु युग का आगमन हुआ था और लोगों ने धातुओं का प्रयोग करना शुरू कर दिया था। आर्य भारत में बसने लगे थे और देश कई रियासतों में विभाजित हो चुका था। ऐसे ही एक पहाड़ी क्षेत्र पलामू में बसने वाले मुंडा आदिवासी समाज और संस्कृति की कथा वर्णित है जो तमाड़ के राजा विक्रम सहदेव की अधीनता में रहने के लिए विवश है। लेखक मंगलसिंह मुंडा का मिथकीय पात्र 'सन्दु' के माध्यम से जनश्रुति पर आधारित कथा को उपन्यास के कलेवर में प्रस्तुत करना सराहनीय है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास बिहार के पश्चिम चम्पारण क्षेत्र की कथा को अभिव्यक्त करता है जो मिनी चम्बल के नाम से प्रसिद्ध है। यह उस समय की कथा है जब बेतिया के जंगल से डाकुओं का सफाया करने के लिए 'ऑपरेशन ब्लैक पायथन' की शुरुआत की गई। इस क्षेत्र में अपराधवृत्ति को उस अजगर के समान फन फैलाए दिखाया गया है जो सबको निगल जाना चाहता है। उपन्यास के प्रारम्भ में देखा जा सकता है - "बोर्ड पर एक चित्र

अंकित था - जबड़े फैलाए एक भयानक काला अजगर और उसकी आंतों से लेकर जबड़े में समाए बेशुमार इनसान।"[22] बेतवा क्षेत्र में बसे थारु आदिवासी समुदाय के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं के साथ-साथ उनके डाकू बनने के कारणों का खुलासा हुआ है। सम्पूर्ण क्षेत्र और वातावरण पुलिस प्रशासन की राजनीति और शोषण से त्रस्त है जिसका वास्तविक चित्रण लेखक संजीव करने में सफल रहे हैं।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में बुंदेलखंड के कबूतरा आदिवासी समुदाय की कथा वर्णित है। आजादी के पश्चात् सामाजिक विषमता और राजकीय तंत्र ने उतरोत्तर विकास किया है। उन पर होने वाले अत्याचार और उत्पीड़न उनके मनोबल को तोड़ देता है, किन्तु उन चुनौतियों से लड़कर जिंदा होने की कथा है। यह क्षेत्र रानी पद्मिनी और झलकारी बाई के शौर्य और बलिदान का साक्ष्य रहा है और कबूतरा समाज स्वयं को उनका वंशज मानते हैं। अंग्रेजों ने उन्हें अपराधी जनजाति अधिनियम के तहत आपराधिक जनजाति के रूप में घोषित किया और पं. नेहरू ने 1936 में उन्हें 'अपराधी' घोषित न करने का ऐलान किया। लेकिन उसकी जड़ें समाज में अभी तक व्याप्त है।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में राजस्थान के बांसवाड़ा-डूंगरपुर क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन को कथा का आधार बनाया गया है। सन् 1919 का जलियांवाला बाग हत्याकांड ब्रिटिश सेना की क्रूरता का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है, लेकिन 1913 का मानगढ़ जनसंहार पहला जलियांवाला बाग हत्याकांड माना जाता है जिसमें लगभग डेढ़ हजार आदिवासी भील-मीणा समुदाय के लोग शहीद हुए थे। इसी पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लेखक हरिराम मीणा जी ने 'धूणी तपे तीर' की रचना की। मानगढ़ पहाड़ ब्रिटिश सेना की इस क्रूरता का साक्षी बना। "वनांचल की भूमि के सपूत गोविन्द गुरु ने सैनिकों से घिरे होने के बावजूद अपनी दृष्टि मानगढ़ की ऊँचाई से चहूँ ओर प्रसारित ऊबड़-खाबड़ अंचल पर डाली जिसके गर्भ में सहज व सरल जीवन के फलने फूलने की क्षमता थी जो मनुष्य, मानवेतर प्राणी जगत व

प्रकृति के मध्य सुन्दर व सार्थक सामंजस्य बनाये रखने की प्रवाहमान परम्परा का वाहक था।"[23]

'लौटते हुए' उपन्यास में भारत की राजधानी दिल्ली शहर, वहाँ का रहन-सहन, लोगों की मानसिकता का वर्णन किया गया। शहर के आकर्षण ने ही सलोमी को अपने गाँव छोड़कर दिल्ली जाने के लिए विवश कर दिया। लेखक ने सलोमी के माध्यम से गाँव और शहरी वातावरण में भिन्नता को अपनी सरल प्रस्तुति से बखूबी उभारा है। दूर से शहर लाजवाब जगह प्रतीत होता है, लेकिन गहराइयों में जाकर वास्तविकता की परतें खुलती हैं। मानवीय संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं है, स्वार्थी लोगों का एक बड़ा तबका सब कुछ निगल जाना चाहता है। ग्रामीण लोगों का हृदय साफ पानी सा निर्मल एवं पारदर्शी होता है जबकि दिल्ली जैसे बड़े महानगरों में हर दूसरा-तीसरा आदमी दोहरा चरित्र लिये हुए है जिन्हें समझना मुश्किल है। लेखक ने शहरी परिवेश का बखूबी चित्रण किया है - "उस शहर में, जहां लोगों की भीड़ थी...मकानों की भीड़ थी...अट्टालिकाओं की भीड़ थी...कार, बसों और दूसरे यातायात के साधनों की भीड़ थी...एक उठे तूफान की तरह वह सबको निगल जाना चाह रहा था।"[24] इस प्रकार गाँव और शहरी वातावरण बड़ी सहजता से उभरकर सामने आया है।

'माटी माटी अरकाटी' उपन्यास अंग्रेजी औपनिवेशिक काल के दौर की कथा है जब झारखंड के आदिवासी और गैर आदिवासी लोगों को कुली के रूप में मॉरिशस ले जाया जा रहा था। अतः इस उपन्यास में मॉरिशस को कथा क्षेत्र का आधार बनाया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही सैकड़ों आदिवासियों को जबरन प्रवासी मजदूर के रूप में मॉरिशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि देशों में ले जाया गया। इस उपन्यास में मॉरिशस के पोर्ट लुइस क्षेत्र में कार्यरत कुलियों की ऐतिहासिक संघर्ष कथा है। कथा की विश्वसनीयता को बरकरार रखने के लिये मॉरिशस के सावान, फ्लैक, पोम्पुले, बाबुंसे, चामरेल, ग्रांड पोर्ट, केप आदि स्थानों की चर्चा की गई है। सूलेक बंदरगाह की जानकारी देते हुए लेखक ने बताया है - "सूलेक ही

सावान जिले के सरकारी लुटेरों और ठगों का अड्डा था। वहीं प्रशासनिक कार्यालय, कोर्ट-कचहरी, पुलिस हेडक्वार्टर, अस्पताल, सरकारी स्कूल, एक बार और झोंपड़ी जैसा कैथोलिक चर्च था। वहां की सड़क बहुत भीड़भाड़ वाली नहीं थी पर तटीय इलाका समुद्री लहरों के शोर से दिन-रात भरा रहता है।"[25] इसके साथ ही छोटानागपुर के भौगोलिक परिवेश की चर्चा मिलती है। यूरोप में 1812 में कपड़े का उद्योग खुल चुका था और कपास की मांग बढ़ने लगी थी। छोटानागपुर की लाल मिट्टी, आवश्यक जलवायु एवं मौसम कपास की खेती के लिये सर्वदा उपयुक्त थी। अतः अंग्रेज अफसर आउसले ने छोटानागपुर में उत्तम किस्म के कपास की पैदावार को प्रोत्साहित किया ताकि अधिक मुनाफा अर्जित किया जा सके। अठारहवीं शताब्दी तक मॉरिशस बाहरी लोगों के हस्तक्षेप के पहले समस्त प्रकार की दुर्भावनाओं से अनजान था। इस द्वीप में डोडो पक्षी के अलावा और कोई नहीं रहता था। डच एवं पुर्तगालियों ने डोडो पक्षी का इतना शिकार किया कि अब यह पक्षी दुर्लभप्राय है। इस प्रकार देशकाल और वातावरण का सफल चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों के क्रमिक विकास को देखें तो एक बड़ा परिवर्तन परिलक्षित होता है। अब उपन्यासों में काल्पनिक पात्रों के स्थान पर जीवंत पात्र देखने को मिलते हैं। उपन्यास को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने के लिये जीवंत व्यक्तित्व को पात्र के रूप में ग्रहण किया गया है। विनोद कुमार का 'समर शेष है' और 'रेड जोन' उपन्यास इसी कोटि के अंतर्गत आते हैं। विनोद कुमार जी ने अपने वास्तविक जीवनानुभवों को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है। वे झारखंड आंदोलन के जिन व्यक्तित्व से मिलें, उन्हें ज्यों का त्यों उपन्यास में स्थान दिया है और यह आवश्यक भी था। कुछ पात्र काल्पनिक हैं जो अपवाद स्वरूप हैं। शिबू सोरेन, ए. के. राय, अजीत दा, विनोद बिहारी महतो, महेंद्र सिंह, सोबरन मांझी आदि पात्र वास्तविक हैं। कुछ उपन्यासों के पात्रों के नाम भिन्न होते हैं, लेकिन ये पात्र वास्तविक चरित्र से प्रभावित हैं। रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'गायब होता देश' इसी प्रकार का उपन्यास है। डॉ. रामदयाल मुंडा, दयामनी बारला के जीवन और संघर्षों से प्रभावित

चरित्रों को पात्र के रूप में क्रमशः सोमेश्वर मुंडा तथा सोनामनी दी को उभारा गया है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उपन्यास कथ्य, पात्र, घटनाओं का जीवंत दस्तावेज बन गया है जिसमें लेखकों के अत्यधिक श्रम और खोज के रूप में तथ्यों का प्रस्तुतीकरण सराहनीय है। इस श्रेणी में 'माटी माटी अरकाटी' उपन्यास को रखा जा सकता है। खोजपरक दृष्टिकोण के साथ तथ्यों के प्रस्तुतीकरण को आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों के लिये एक शुभ संकेत के रूप में देखा जा सकता है।

कुल मिलाकर आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा और शिल्प के विवेचन से स्पष्ट है कि आदिवासी उपन्यासों की भाषा अपेक्षाकृत सहज एवं सरल है। इसलिए आदिवासी लेखकों की भाषा सरल होते हुए भी विशिष्ट है। किसी प्रकार का भाषिक आडंबर नहीं है और न ही बनावटीपन है। आदिवासियत को अपनी रचनाओं द्वारा देश-दुनिया में पहुँचाने की कोशिश लेखकों द्वारा लगातार हो रही है। आदिवासी लेखक अपने पुरखों की परम्पराओं का वहन करते हुए हिन्दी के माध्यम से लोगों के साथ निरंतर संवाद स्थापित करते हैं और आदिवासियत की रक्षा करते हुए साहित्य जगत में एक मुकाम हासिल कर रहे हैं।

संदर्भ:

[1] मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2013, पृष्ठ: 129

[2] थ्योंगो, न्गूगी वा, औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति, ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2010, पृष्ठ: 59

[3] तलवार, डॉ. वीर भारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच एक एक्टीविस्ट के नोट्स, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण: 2012, पृष्ठ: 449

[4] सागर, शैलेन्द्र (संपा.), कथा क्रम, अक्टूबर-दिसम्बर 2011, वर्ष: 14, अंक: 50, पृष्ठ: 44

[5] तरुण, वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची, प्रथम संस्करण: 2005, पृष्ठ: 314

[6] https://eurasianet.org/turkey-village-preserves-bird-language-in-a-cell-phone-world

[7] पंकज, अश्विनी कुमार, माटी माटी अरकाटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2016, पृष्ठ: 227

[8] वही, पृष्ठ: 248

[9] सिंह, राकेश कुमार, हुल पहाड़िया, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण: प्रथम 2012, पृष्ठ: 224

[10] मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम, हरियाणा, तृतीय संस्करण: 2014, पृष्ठ: 308-309

[11] सिंह, राकेश कुमार, जो इतिहास में नहीं है, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण: 2005, पृष्ठ: 246-247

[12] तेजिन्दर, काला पादरी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002, पृष्ठ: 112

[13] कुमार, विनोद, रेड जोन, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2015, पृष्ठ: 24

[14] रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पांचवा संस्करण: 2019, पृष्ठ: 83-84

[15] रणेन्द्र, गायब होता देश, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया प्रा. लि., हरियाणा, प्रथम संस्करण: 2014, पृष्ठ: 54

[16] संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2015, पृष्ठ: 52

[17] पंकज, अश्विनी कुमार, माटी माटी अरकाटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2016, पृष्ठ: 23

[18] रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पांचवा संस्करण: 2019, पृष्ठ: 77

[19] कुमार, विनोद, समर शेष है, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण: 2005, पृष्ठ: 167

[20] कुमार, विनोद, रेड जोन, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2015, पृष्ठ: 103-104

[21] पुष्पा, मैत्रेयी, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति: 2011, पृष्ठ: 82

[22] संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2015, पृष्ठ: 8

[23] मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम, हरियाणा, तृतीय संस्करण: 2014, पृष्ठ: 374-375

[24] तरुण, वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची, प्रथम संस्करण: 2005, पृष्ठ: 31

[25] पंकज, अश्विनी कुमार, माटी माटी अरकाटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2016, पृष्ठ: 104